International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(2): 230-232

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(2): 230-232
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-01-2020
Accepted: 20-02-2020

पूनम रानी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ,
भारत

Corresponding Author:
पूनम रानी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ,
भारत

भारतीय दर्शनों में बुद्धितत्त्व के सजातीयतत्त्व एवं प्रकशरूप का विवेचन

पूनम रानी

प्रस्तावना

भारतीय दर्शनों में बुद्धि के पर्याय मन, ज्ञान, उपलब्धि, प्रकाश, प्रज्ञा, अन्तर्दृष्टि, मति, चित्त, विज्ञान, चेतना, प्रत्यय, मेधा, अवबोध और युक्ति आदि को माना गया है। नैयायिकों ने ''बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यर्थान्तरम्।''[1] अर्थात् बुद्धि उपलब्धि और ज्ञान तीनों पर्याय हैं।वैशेषिकों की भी यही धारणा है। योगाचार्यों ने बुद्धि को चित्त की संज्ञा दी है।[2] श्रुति में भी बुद्धि को ज्ञान एवं विज्ञान के रूप में माना गया है।[3] बौद्धों ने बुद्धि के लिए विज्ञान शब्द का प्रयोग किया है। भारतीय दार्शनिकों ने बुद्धि के पर्यायों को अपने–अपने अनुसार परिभाषित किया है, किन्तु उन सबका एक ही पर्याय है। इन सभी पर्यायों को दार्शनिकों ने इस प्रकार बताया है–

ज्ञानः बुद्धि के विषयाकार परिणाम को ज्ञान कहा गया है– जैसे यह घट है, यह पट है। न्यायवैशेषिकों ने ज्ञान को आत्मा का गुण कहा है। जबकि वेदान्त आदि दर्शनों में ज्ञान को बुद्धि अथवा चित्त का धर्म माना गया है। प्रमाणों के द्वारा ग्राह्य पदार्थ के आकार में जिसका परिणाम होता है। बुद्धि का यह अर्थाकार परिणाम ही ज्ञान कहलाता है। यही ज्ञान बुद्धि में ही आश्रित होता है। इस कारण ज्ञान को बुद्धि का धर्म कहा गया है।

बुद्धि शब्द की उत्पत्ति 'बुध' धातु से हुई है जिसका अर्थ है– जानना तथा ज्ञान शब्द की उत्पत्ति ज्ञा धातु से हुई है जिसका अर्थ भी 'जानना' ही होता है। इस प्रकार ज्ञान एवं बुद्धि का एक ही अर्थ है। गीता में श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि ''बुद्धौ शरणमन्विच्छ'' अर्थात् बुद्धि अथवा ज्ञान की शरण में जाओ।

उपलब्धिः दर्पण के समान स्वच्छ बुद्धि में वर्तमान ज्ञान से चैतन्यशक्तिरूप आत्मा का भेद ज्ञान न होने से आत्मा में ज्ञानाक्षय होने के अभिमान को 'उपलब्धि' कहा गया है।[5] क्योंकि जब इन्द्रियों के मार्ग से बुद्धि बाहरी पदार्थों के सम्पर्क में आती है और उनसे प्रभावित होती है; तो उसी पदार्थ का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार चेतना शक्ति रूपान्तरित बुद्धि में प्रतिबिम्बित होकर बुद्धि के रूपान्तरण का अनुकरण करती है। यही अनुकरण अथवा तद्वृत्यनुकार ज्ञान ''उपलब्धि'' कहलाता है।[6]

युक्तिः बुद्धि जब बहुत से कारणों की संगति से ज्ञेय विषयों को देखती है तो तब वह ''युक्ति'' कही जाती है।[7] अर्थात् जो बुद्धि कारणों की उत्पत्ति से जिन विषयों के तत्त्व का ज्ञान नहीं हैं, उस तत्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन विषयों को जानती है। वह बुद्धि ''युक्ति'' कहलाती है।

मेधा एवं मनीषाः अनुभूत अर्थ के अवधारण को 'मेधा' कहा गया है, और अनुभाव्य अर्थ को मनीषा कहा गया है।[8]

बोधः जब इन्द्रियों का किसी घट आदि विषय के साथ सन्निकर्ष होता है तो वह विषय अपने स्वरूप सहित इन्द्रियों में प्रतिबिम्ब हो जाता है। उस विषय का इन्द्रियों, मन, अहंकार एवं अंत में बुद्धि के साथ सम्बन्ध होने पर वह विषय प्रतिबिम्ब बुद्धि में प्रतिफलित होता है। बुद्धि का सीधा संबध आत्मा के साथ होने से आत्मा को उस विषय का ग्रहण होता है। इस प्रकार आत्मा को होने वाला विषय ज्ञान ''बोध'' कहलाता है।[9]

मतिः पदार्थों में किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को देखने वाली बुद्धि मतिरूप है। ज्ञाता को ज्ञेय वस्तु का आभास होना 'मति'कहलाता है।[10]

प्रज्ञाः मनुष्यबुद्धि की उच्चतम क्रियाशीलता को बुद्धि का प्रज्ञारूप कहा गया है। जिसे आन्तरिक ज्ञान पर बल देने वाली भी कहा गया है। बुद्धघोष में मानव की अन्तर्दृष्टि के आसान और कठिन रूपों के ज्ञान के लिए प्रज्ञा को सहायक कहा है। जब वैयक्तिक स्वरूप पूर्वक विश्व के साथ एकत्व में परिणत हो जाता है तो अनुभव से प्राप्त ज्ञान का स्थान प्रज्ञा ले लेती है। असंस्कृत व्यक्ति को विज्ञान को बढ़ावा देने वाला कहा गया है और धर्मसंस्कारयुक्त व्यक्ति प्रज्ञा विकसित करने वाला कहा गया है।[11] योगाचार्यों ने प्रज्ञा को ही अन्तर्दृष्टि कहा है। जब प्रज्ञा विकसित होते–होते अन्त में ज्ञान के प्रकाश रूप में परिवर्तित हो जाती है तो तब यही प्रज्ञा अन्तर्दृष्टि भी कही जाती है।[12] महात्मा बुद्ध ने प्रज्ञा को उत्कृष्ट निधि मानते हुए कहा है कि परोपकार की भावना के बिना 'प्रज्ञा' की प्राप्ति संभव नहीं है। यदि प्राप्ति हो भी जाए तो वह फल देने वाली नहीं हो सकती। क्रियात्मक रूप से सदाचरण धारण करके समाधि में बैठकर ध्यान करने से ही 'प्रज्ञा' की प्राप्ति संभव है।[13]

प्रायः दर्शनों में बुद्धि, मन, चित्त एवं प्रज्ञा में साम्य है अथवा इन्हें पर्याय के रूप में जाना जाता है; किन्तु इनमें सूक्ष्म अन्तर भी देखने को मिलता है। जैसे मन एवं बुद्धि में सूक्ष्म भेद है। मन विचारों का समूह है और बुद्धि उन विचारों का सदुपयोग करने की क्षमता है। जैसे किसी मेले में मनुष्यों की बहुत बड़ी भीड़ है किन्तु उनमें किसी प्रकार का कोई अनुशासन नहीं है। जिस मनुष्य का जहाँ मन करता है, वहीं पर खड़ा होता है, वहीं पर बैठता है। दूसरी ओर सेना के सैनिक हैं, जो पंक्तिबद्ध होकर खड़े हैं। जो एक ही आदेश पर बैठते हैं, एक ही आदेश पर खड़े होते हैं और एक ही आदेश पर चलते हैं। इस प्रकार मेले में भी इंसान हैं और सेना में भी इंसान ही हैं। दोनों में केवल फर्क अनुशासन का है। सेना में जहाँ अनुशासन है, जिसके कारण उसमें शक्ति है और मेले में जहाँ अनुशासन नहीं है,इस कारण वहाँ शक्ति नहीं है। वहाँ न तो कोई व्यक्ति किसी से कुछ करवा सकता है और न ही वहाँ कोई किसी की सुनता है। किन्तु सेना में ऐसा नहीं होता। वहाँ एक व्यक्ति के ईशारे पर पूरी सेना वही आदेश मानती है। इसी प्रकार मन एवं बुद्धि दोंनों में ही विचार हैं किन्तु फर्क इतना है मन में विचार चंचल, अनियमित और बेचैन हैं। वहीं बुद्धि में चिन्तन एवं मनन की शक्ति है। बुद्धि उन विचारों को एक दिशा में लगा सकती है। जैसे बिखरी हुई ईटों के ढेर में से निकलना मुश्किल हो जाता है और उन्हीं ईंटों को अच्छी प्रकार से जमा कर दिया जाता है तो वहाँ एक खूबसुरत मैदान अथवा रास्ता तैयार हो जाता है। इसी प्रकार मन एवं बुद्धि में भी अन्तर है।

मन और बुद्धि दोनों ही अन्तःकरण के अन्तर्गत आने वाली अन्तरिन्द्रिय हैं। लेकिन अपने अलग–अलग व्यापार के कारण दोनों में वैषम्य है। मन का कार्य है– संकल्प–विकल्प करना और बुद्धि का कार्य है– निश्चय करना। किन्तु बुद्धि को निश्चय कराने में मन की अहम् भूमिका है। जैसे जब कोई व्यक्ति रात के अंधेरे में किसी मनुष्य की आकृति जैसा कुछ देखता है तो सर्वप्रथम उसे वह अस्पष्ट दिखाई देता है। ध्यानपूर्वक देखने पर वह विचार करता है कि यह तो धनुष पर बाण चढ़ाये हुए कोई राक्षस प्रवृत्ति का पुरूष है। ऐसा विचार करके वह वहाँ से भाग जाता है। इस प्रकार बुद्धि को उस आकृति की निश्चित रूप से पहचान कराने में मन की अहम भूमिका है।

जब मन पर बुद्धि के साथ इन्द्रियों का भी प्रभाव रहता है, तो मनुष्य कर्त्तव्य कर्म और अकर्त्तव्य कर्म की पहचान नहीं कर सकता। किन्तु जब मन पर बुद्धि का प्रभाव होता है तो मन पर से इन्द्रियों का प्रभाव मिट जाता है जिससे मनुष्य उस विषय पर निश्चयपूर्वक विचार कर सकता है।[14] जैसे मन एवं बुद्धि में अन्तर है, वैसे ही बुद्धि और प्रज्ञा में भी अन्तर है। इस विषय में योगदर्शन में कहा गया है कि चित्त (बुद्धि) में अनेक वृत्तियों का उद्भव होता है। जब चित्त (बुद्धि) किसी एक वस्तु के ध्यान में लग जाता है तो अन्य वृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं तथा जिस वृत्ति पर चित्त (बुद्धि) ध्यान करता है,वही वृत्ति मुख्य रहती है। इस प्रकार के ध्यान का प्रकर्ष ही 'प्रज्ञा' है।[15]

जब तक बुद्धि विकल्पों में फंसी रहती है, तब तक मनुष्य अन्धकार में रहता है। जब बुद्धि विशुद्ध प्रज्ञा का साक्षात्कार कर लेती है तो शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है। शुद्ध ज्ञान होने पर सब प्रपंच और बुद्धि की समस्त प्रकल्पनायें क्षीण हो जाती हैं। अतः कल्पनाविहीन बुद्धि ही 'विशुद्ध प्रज्ञा' कही जाती है।[16]

बुद्धि देश, काल, शक्ति और कारण आदि विभागों की सीमा में रहकर ही कार्य करती है और प्रज्ञा अथवा अन्तर्दृष्टिरूप परम सत्ता को ग्रहण कर सकती है।[17] प्रज्ञा के अभाव में इन्द्रियाँ एवं मन अकिंचित्कर है। अतः इन्द्रियॉं, मन एवं बुद्धि की अपेक्षा 'प्रज्ञा' का अधिक महत्व है, जिसे श्रुतियों भी बताया गया है।[18]

जिस प्रकार एक ही वस्तु क्रियाभेद के कारण भिन्न–भिन्न नामों से पुकारी जाती है। उसी प्रकार चेतन क्रिया से सम्बन्ध होने के कारण यह बुद्धि अनेक नामों से पुकारी जाती है। मनन क्रिया से सम्बद्ध होने के कारण मन कहा जाता है तथा विषयों के ग्रहण में कारण होने से बुद्धि अथवा विज्ञान कही जाती है।[19] लेकिन यही बुद्धि जब ज्ञान की सर्वोत्तम सीढ़ी पर पहुँच जाती है तो अन्त में प्रज्ञा एवं अन्तरर्दृष्टि का रूप धारण कर लेती है।

बुद्धि के अन्तर्दृष्टि रूप को राधाकृष्णन् ने श्री अरविन्द द्वारा परिभाषित अन्तर्दृष्टि को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि अन्तर्दृष्टि ऐसी चेतन शक्ति है, जो उच्चतर मानस तथा प्रदीप्त मानस से कही अधिक 'ज्ञान' के निकट है। जब आत्मा की चेतना शक्ति से ऐसा ज्ञान होने लगे कि उसे अपने विषय का स्पष्ट ज्ञानात्मक बोध हो रहा है, तो ऐसी दृष्टि अन्तर्दृष्टि कहलाती है। ज्ञान का प्रारम्भ अन्तर्दृष्टि से ही होता है, क्योंकि इसी स्तर में उत्कृष्ट क्षेत्र का संज्ञान स्पष्टरूप में प्रारम्भ होने लगता है। अन्तर्दृष्टि में इतनी शक्ति कही गई है कि वह सत्य के वास्तविक पक्ष को देख सकती है।[20]

जब बुद्धि प्रज्ञा एवं अन्तद्रृष्टि स्वरूप हो जाती है, तो मनुष्य आत्मानुभूति की खोज की खोज में एकाग्र हो जाता है। वह निरन्तर चिन्तन करता है और सत्य क्या हैं? यथार्थ ज्ञान क्या हैं? आदि का चिन्तन करता है। मनुष्य को आन्तरिक आनन्द की अनूभूति होती है, जिससे बाहर के पदार्थों से होने वाले सुख का भी अनुभव नहीं होता और बुद्धि निरन्तर ध्यान की अवस्था में रहती है। बुद्धि में विवेक जाग्रत हो जाता है। सत् और असत् के अन्तर को समझती है। सत् के प्रति जब तक मनुष्य का अनुराग नहीं होता तब तक विवेक

जाग्रत नहीं होता। जिस प्रकार हंस दूध में मिले हुए पानी को छोड़ कर केवल दूध को ग्रहण करता है और चींटी मिट्टी में मिली हुई चीनी में से केवल चीनी को ही ग्रहण करती है। उसी प्रकार विवेकशील बुद्धि भी सत् एवं असत् के अन्तर को समझकर केवल सत् का ही ग्रहण करती है। विवेकयुक्त बुद्धि प्रवृत्तियों का जाल नहीं बुनती अपितु प्रवृत्ति को देखकर उनके पीछे रहने वाले कारण को देखती है और साथ ही उसके होने वाले परिणाम को भी देखती है। जब तक बुद्धि मूढ़ अवस्था में रहती है, तब तक वह ज्ञान की सत्ता को स्वीकार नहीं कर सकती अर्थात् इन्द्रियों से परे भी कुछ है? ऐसा नहीं मानती। किन्तु जब बुद्धि ध्यानादि के अभ्यास द्वारा प्रज्ञा अथवा अन्तर्दृष्टि स्वरूप हो जाती है तो वह सत्य की खोज शुरू करती है। जैसे कमल कीचड़ में रहते हुए भी अपनी सुगन्ध नहीं छोड़ता, मछली काई युक्त जल में रहकर भी चाँदी के समान चमकती है, उसी प्रकार बुद्धि भी प्रज्ञा अथवा अन्तर्दृष्टि स्वरूप होकर सत् और असत् में से केवल सत् को ही ग्रहण करके उसे नहीं छोड़ती। बुद्धि के इसी रूप को ही भारतीय दर्शनों में प्रकाश–स्वरूप माना है। ऐसी बुद्धि को विषयों के प्रकाशन में किसी अन्य इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी

बुद्धि केवल योगियों की अथवा निरन्तर ध्यान का अभ्यास करने वाले मनुष्य की ही संभव है।

स्वामी विवेकानन्द ने राजयोग में ऐसी बुद्धि के विषय में कहा है कि जिस पुरुष की कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है, उसके लिए यह समस्त प्रकृति एक नया रूप धारण कर लेती है और ज्ञान का द्वार खुल जाता है। कुण्डलिनी जाग्रत होने पर पुस्तकों में ज्ञान की खोज नहीं करनी पड़ती, अपितु मनुष्य की बुद्धि ही विशिष्ट ज्ञानरूप पुस्तक का काम करेगी। इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ प्रत्येक मेरूदण्ड वाले प्राणी में विद्यमान हैं। महर्षियों के कथनानुसार साधारण जीवों में सुषुम्णा का द्वार बन्द रहता है। योगी मनुष्य ही सुषुम्णा क्रिया का आभास कर सकता है।जब इस सुषुम्णा का द्वार खुलता है तो जीव के अन्दर से स्नायविक शक्ति–प्रवाह ऊपर चढ़ता जाता है। अन्त में बुद्धि उस स्तर पर पहुँच जाती है जहाँ तर्क का कोई स्थान नहीं है।[22]

मानवशरीर के सात चक्रों (मूलचक्र, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रारचक्र) में से सातवां चक्र सहस्रार चक्र मस्तिष्क में स्थित है।मनुष्य शरीर की उत्कृष्ट शक्ति 'ओज' है, जो मस्तिष्क में स्थित है। ओज की अधिकता वाला मनुष्य भी अत्यधिक प्रकाशमान और उत्कृष्ट बुद्धिवाला होता है। जब बुद्धिशक्ति कुण्डलिनी जाग्रत होने से पहले काम, क्रिया एवं चिन्तन आदि में प्रवृत होती थी। अब वही बुद्धिशक्ति प्रकृष्ट अथवा प्रकाश स्वरूपा प्रज्ञा अथवा अन्तर्दृष्टि के रूप में परिणत हो जाती है। ऐसी बुद्धि ही सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान प्राप्त कराने वाली हो जाती है।

अतः जब तक बुद्धि पर तमोगुण का आवरण रहता है, तब तक वह इन्द्रियों की सहायता से ज्ञान प्राप्त करती है। किन्तु जब बुद्धि तमोगुण में वृद्धि करने वाले विषयों के प्रति वासना का योग आदि के अभ्यास से विनाश कर देती है तो बुद्धि (चित्त) स्वयं ध्येय विषयों का साक्षात्कार कर लेती है।[23] बुद्धि के इसी रूप को दर्शनों में प्रकाशस्वरूप माना गया है।

संदर्भ

1. (क) न्याय सूत्र 1.1.15 (ख) ज्ञानं प्रकाशो अवगमोभानमिति पर्यायाः। गौडपादभाष्य पृ॰64,पृ॰4,5 (ग) सिद्धिरधिगमो अबोधेत्यर्थः। युक्तिदीपिका, पृ॰34.
2. चित्तमन्तःकरणसामान्यम्। योग सूत्र 1.1
3. (क) विज्ञायते अनेनसर्वमिति विज्ञानशब्दतः। बृहदारण्यक वार्तिकसार 4.3.7 वार्तिक 88
   (ख) कठोपनिषद् 1.2.9
4. तर्कभाषा (श्री बदरीनाथ शुक्लकृत हिन्दी व्याख्या) में सांख्याचार्यों का मत।
5. वैशेषिक दर्शन प्रशस्तपादभाष्य, पृ॰ 137.
6. भारतीय दर्शन के विविधस्वरूप भाग– 1, पृ. 141
7. बुद्धिः पश्यति या भावान् बहुकारणयोगजान्।
   मुक्तिस्त्रिकाला सा ज्ञेया त्रिवर्गः साध्यते यथा।
   –चरकसंहिता पूर्वभाग) अ., श्लोक 25, पृ. 82
8. मेधामनीषे मा विशातां समीची भूतस्य भव्यस्यावरूध्यै।
   न्यायपरिशुद्धि में श्रुतिवाक्य पृ॰ 348
9. योगदर्शन (उदयवीर शास्त्री) समाधि पाद पृ॰ 12
10. शुद्धबुद्धिमीमांसा (ईमानुएल काण्ट) पृ॰ 5
11. भारतीय दर्शन (राधाकृष्णन्), पृ॰ 344
12. वही, पृ॰ 345
13. धम्मपद 183
14. सांख्यकारिका, 27 की व्याख्या।
15. भारतीय दर्शन (बलदेव उपाध्याय) (दशम परिच्छेद, योगदर्शन), पृ. 297
16. सद्धर्मपुण्डरीक, पृ॰ 134
17. भारतीय दर्शन (राधाकृष्णन्) पृ॰ 143.
18. कौषितकी उपनिषद् 3.6.7
19. भारतीय दर्शन, बलदेवोपाध्याय, षष्ठ परिच्छेद, बौद्ध दर्शन, पृ॰ 134
20. भारतीय दर्शन (राधाकृष्णन), पृ॰ 352
21. समकालीन भारतीय दर्शन में रामकृष्णदेव का दर्शन।
22. राजयोग (स्वामी विवेकानन्द), पृ॰ 97
23. योगसार संग्रह (विज्ञानभिक्षु) प्रथम अंश, पृ॰ 2